



भक्ति काव्य में निहित लोकतत्त्व और लोकचेतना

प्रशान्त सिंह

वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य में भक्ति काल देशव्यापी भक्ति आन्दोलन की देन है। भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात मुस्लिम आन्दोलन के प्रतिक्रिया के स्वरूप नहीं अपितु इसका सूत्रपात दक्षिण भारत में तुर्कों-पठानों के आक्रमण से बहुत पहले हो गया था। दक्षिण भारत के इस भक्ति आन्दोलन ने उत्तर भारत में मूलतः नवीन लोकजागरण का संचारण किया; जिसके फलस्वरूप यह भक्ति आन्दोलन पुरोहितवाद, शास्त्रज्ञान के दम्भ, अंधविश्वासों के प्रति विद्रोह, लोकभाषा के उदय तथा तत्कालीन समाजिक व्यवस्था में जनता का सामंतवाद विरोधी सांस्कृतिक आन्दोलन था। जिसने समाज को ऐसे भक्त कवि, संत एवं सूफी कवि दिये जिनके काव्य का मूलाधार 'प्रेमतत्त्व' है। इन सभी ने अंध परम्परा, धार्मिक कट्टरता तथा सामंतवाद का, विरोध किया तथा लोकवादी काव्य की रचना करके लोक जागरण का प्रयास किया। अपनी इसी लोकवादी दृष्टि के कारण भक्तिकाल को सामंतवादी नहं अपितु जन के जागरण का काव्य कहा जाता है क्योंकि इसमें लोक की पीड़ा, उल्लास, पर्व के वर्णन के माध्यम से जनता की समस्याओं-चुनौतियों आदि को जनता की ही भाषा में अर्थात् लोक भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

इन भक्तिकालीन कवियों का एक महत्वपूर्ण कार्य लोकसंस्कृति का उद्घाटन है। चूँकि ये भक्त कवि स्वतः इस संस्कृति की उपज थे; इसीलिए ये उस संस्कृति का उद्घाटन कर सके। यदि महाकवि तुलसीदास एवं सूफी कवि जायसी में अवध की संस्कृति की विशेषताओं का समावेश है तो सूरदास में ब्रज-प्रदेश की लोक संस्कृति अपनी सम्पूर्ण मधुरता के साथ मूर्तरूप में विद्यमान है। मीरा के पदों में उनके स्वयं के दर्द के साथ-साथ नारी जाति के दर्द एवं संघर्ष तथा राजस्थान की लोक संस्कृति के स्वर गूँजे हैं। लोक जीवन के चित्रों के साथ-साथ नारी जाति के दर्द एवं संघर्ष तथा राजस्थान की लोक संस्कृति के स्वर गूँजे हैं। लोक जीवन के चित्रों के साथ-साथ इन भक्त कवियों ने अपनी भाषा में लोकमन की हलचल, हर्ष, उल्लास, अभिव्यक्ति सभी को सम्पूर्ण निष्ठा के साथ उभारा है।

भक्तिकालीन कवियों में सर्वप्रथम कबीरदास एक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के साथ उपस्थित होते हैं। उनकी दृष्टि में यदि कुछ सत्य था तो वह प्रेम, बाकी सभी कुछ नश्वर। वे धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय से परे थे। वे तो सबसे पहले अपना घर फूँकना चाहते थे। वस्तुतः यह 'घर' केवल घर नहीं अपितु वह रुढ़ जर्जर परम्परा है, जो उस युग में अप्रासंगिक थी। यह वह व्यवस्था भी है जिसने समाज में ढेर सारी विषमताएँ पैदा की। कबीर का यह अनहतनाद वातावरण में गूँजता रहा।

कबीर ने जहाँ समाज में व्याप्त, बाह्य संस्कारों को अविवेकपूर्ण माना। ये रुढ़ संस्कार ही समाज को पतनमुखी बना रहे थे शायद उनकी इसी विशेषता के मद्देनजर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा

है कि उन्होंने "ठीक मौके पर जनता के बड़े भाग को संभाला जो नाथपंथियों के प्रभाव से प्रेमभाव एवं भक्ति रस से शून्य होता जा रहा था और जनता में आत्मगौरव का भाव जागृत किया।"¹ प्राचीन समय से काशी में प्राण तजने से मुक्ति पाने की धारणा पर भी कबीर ने प्रहार किया-

"जो कासी तन तजै कबिरा तो रामहि कौन निहोरा रे।"

कबीर कथनी-करनी के अन्तर को मिटाना चाहते थे, अंधविश्वास को झुठलाना चाहते थे, तभी तो वे मृत्यु का वरण काशी में नहीं, मगहर में करते हैं।

कबीर का काव्य लोकचेतना का काव्य है। इस काव्य को सार्थक बनाने हेतु कबीर ने महात्मा बुद्ध के सिद्धान्त का पालन किया, अपने उपदेश उस भाषा में दिये जो लोक की भाषा थी, जन की भाषा थी। कबीर को अपने समय और समाज का व्यापक अनुभव तो था ही उन्होंने इसका व्यापक अध्ययन भी किया। समाज में व्याप्त भेदभाव से प्रभावित हो उन्होंने एक ऐसे धर्म का प्रवर्तन करने का प्रयास किया जो धर्म एवं समाज का विरेचन कर दें। उनका धर्म लोक आश्रित था जिसकी नींव प्रेम थी।

आचार्य शुक्ल ने जायसी को कबीर का पूरक माना है, यह बात सच है कि जिस पतनमुखी समाज को बचाने की अलख कबीर ने जगाई वह जायसी द्वारा पूरी हुई। जायसी के काव्य पद्मावत में अवध की प्रकृति अपनी सम्पूर्ण सुषमा के साथ मूर्त है। अवध की एक-एक वनस्पति ही नहीं, पशु-पक्षी भी वहाँ मौजूद हैं।... अवध के तिथि-त्योहार, खेलकूद, उत्सव, पर्व वहाँ के निवासियों के सुख दुख, उनके कष्ट क्लेश सबसे जायसी की निपट आत्मीयता है। सूफ़ीयाना घुम्मकड़पन ने उन्हें जन-मन में परिचित कराया, उन्हें जमीन, मिट्टी एवं अंचल से एकतान किया और लोक का मन उनकी रचना और प्रस्तुति में प्रतिबिम्बित हुआ। लोकजीवन के जिस भी रूप का चित्रण जायसी करते हैं वह जीवंत हो उठता है। बारहमासे की सहायता से रानी नागमती के विरहवर्णन की अभिव्यंजन केवल नामगती काअकेले का दुख नहीं रह जाता वह भारतीय समाज की प्रत्येक स्त्री का दुख है। वह ये भूल जाते हैं कि कवह एक रानी के दुख का वर्णन कर रहे हैं यथा-

"विरह बाढ़, दारुन भी सीऊ। कँपि- कँपि मरौ; लेई हरि जीऊ।।"²

पद्मावत का सबसे शसक्त पक्ष है-लोकजीवन का चित्रण। कथा तो राजा-रानियों की है पर इसके पीछे जायसी का ग्रामीण मन, लोकजीवन से उनका गहरा लगाव ही कदम-कदम पर अभिव्यक्ति होता है। ज्ञातत्व है किवे अलाहीन खिजली को एक खलनायक के

सदृश्य प्रस्तुत करते हैं। जायसी जाति से मुसलमान थे पर उनकी सांस्कृतिक चेतना हिन्दू धर्म के अधिक निकट थी जायसी की लोकचेतना का इससे बढ़कर उदाहरण क्या हो सकता है कि इन्होंने इश्क हकीकी को व्यक्त करने के लिए जिन लौकिक प्रेम कथाओं को आधार बनाया, वे भारतीय थी और हिन्दू तथा मुस्लिम जनता विशेषकर ग्रामीण जनता के बीच लोककथाओं के रूप में प्रसिद्ध थीं। भारतीय प्रेम कथाओं का समन्वय सूफी मसनवी शैली के साथ करके जायसी ने अपनी समन्वयवादी दृष्टि का परिचय दिया है। संभवतः ऐसे मुसलमानों के लिए ही भारतेन्दु जी का यह पंक्ति सार्थक प्रतीत होती है—

“इन मुसलमान हरि जनन पै कोटिक हिन्दू बाएि।”

जायसी सच्चे अर्थों में लोकजीवन के गायक हैं। उनकी कथा भी लोकमानस में परम्परा से व्याप्त कथा है, जिसे उन्होंने बड़ी तन्मयता तथा बड़ी मस्ती के साथ कहा है। उनकी भाषा, उनकी कल्पना, उनकी अभिव्यक्ति शैली, इन सबका लोकजीवन से सीधा सम्बन्ध है। वे बड़ी सहजता के साथ, आत्मीय रूप में हिन्दू परिवारों में प्रवेश कर गये हैं, और उनके एक-एक विश्वास, मान्यता, रीति-रीवाज, तिथि-त्यौहार आदि को बड़ी विश्वसनीयता के साथ उनके समक्ष प्रस्तुत किया है। उनके ऋतु वर्णन तथा बारहमासा में अवध के सामान्य जन के जीवन से सीधा साक्षात्कार किया जा सकता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी इस बात को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि—“हिन्दू हृदय और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियाँ हिन्दुओं की बोली में पूरी सहृदयता के साथ कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया।”³ जायसी सच्चे अर्थों में लोकजीवन के गायक हैं उन्होंने लोक की भाषा (अवधी) का चयन करके यह साबित भी कर दिया है।

इस ‘लोकतत्व’ का तात्पर्य है क्षेत्र या परिवेश की संस्कृति का गहरा बोध होना जिसमें व्यक्ति का व्यवहार, सामाजिक स्थिति, हर्ष, उल्लास, पर्व, रहन-सहन भाषा सभी कुछ समाहित हो जाते हैं। अपनी इस लोकतत्वादी दृष्टि के कारण भक्तिकालीन कवियों की भूमिका लोकहितकारी थी। भक्तिकालीन कवियों में स्त्री पुरुष, सन्यासी और गृहस्थ, हिन्दू और मुसलमान शूद्र और द्विज सगुण और निर्गुण ये सभी हैं। भक्तिकालीन कवि लोकमंगल दृष्टि के संस्थापक और रक्षक के रूप में विख्यात हैं। ये लोक में व्याप्त आडम्बर, अंधविश्वास, कर्मकाण्ड, कट्टर आचार-विचार की रीति मानवमात्र को मुक्ति दिलाकर प्रेम की शक्ति की स्थापना करना चाहते थे। लोकभाषा में अपनी बात को जनता के मध्य प्रस्तुत करना इनका प्रतिपाद्य था। इस दृष्टि से कबीर, जायसी, सूरदास, तुलसीदास, मीराबाई का काव्य महत्वपूर्ण है। भक्तिकाल की कविता की कालजयिता का एक मात्र कारण लोकजीवन है जिसे भक्तिकालीन रचनाकारों ने खुली आँखों से निहारा और अपने रचनात्मक मानस में आत्मसात कर जनता के सम्मुख रखा।

सूरदास भक्तिकाल के ऐसे ही कवि माने गए हैं उन्होंने अपनी रचनाओं में लोक की ही आशाओं-आकांक्षाओं, सुख-दुख का चित्रण किया, लोक की पीड़ा ले अपने प्रभु के समक्ष उपस्थित हुए। सूर का काव्य लोक जीवन और जनजीवन से एकात्म का काव्य है, और यह रचनाकार और लोकजीवन का एकात्म ही तो काव्य को कालजयिता प्रदान करता है। उनकी अनुभूतियाँ ही उनका काव्य है।

सूर में न तो गोस्वामी जी की तरह स्पष्टता थी न कबीर के समान अकखड़पन, वह अपने भाव में मग्न रहने वाले भक्त थे। सूर के काव्य की पृष्ठभूमि जनता का प्रेम तथा जनता की मधुर कोमलभावनाओं का प्रतिबिम्ब है।

सूरदास के समय में जनता नाथपंथ से प्रभावित थी। नाथपंथी जनता को चमत्कारवाद से बहकाते थे। ऐसे समय पर सूर ने नाथपंथ को लोक विरोधी मान उसका तार्किकता से खण्डन किया एवं सगुण भक्ति का मार्ग खोला।

सम्पूर्ण भक्तिकाव्य लोक-चेतना का काव्य है और सूरदास जी उसी जनवादी चेतना के कवि हैं। विशुद्ध मानवीय तथा लौकिक अनुभूति के माध्यम से लोकजीवन के विभिन्न चित्र उकेरने का प्रयास इनकी बससे बड़ी उपलब्धिता है। इस चित्रण में लोक की पीड़ा और लोक का उल्लास तो है ही साथ ही लोक के हृदय की खरी और सटीक पहचान भी है। सूर का समाज एक सामंती समाज था, जहाँ साधारण जनता कराह रही थी। सूर के पदों में दैन्य, वेदना तथा पीड़ा का जो मार्मिक अभिव्यक्ति है, वह उस सामंती समाज में घुटते हुए जन साधारण विशेष कर नारी समाज की पीड़ा है जिसको सूरदास जी के विनय के पदों के अनतर्गत परखा जा सकता है। सूरदास ने नारी के मातृत्व एवं गार्हस्थ दोनों रूपों के द्वारा नारी को एक अलग गरिमा प्रदान की। शिशु तथा माता के इस वात्सल्य तथा शृंगार के जिस रूप का चित्रण सूरदास ने किया है वह समूचे हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

शिवकुमार मिश्र जी ने सूर की लोकचेतना के विषय में अतलाते हुए कहा है कि, “लोक जीवन का कोना-कोना इन्होंने झाँका है और उसी के भीतर से अपने अनुभवों की राशि इन्होंने जुटाई है। लोकजीवन के समूचे प्रसार में इन्होंने सामान्य जन के ही, उसकी सम्पूर्ण आशाओं आकांक्षाओं, सुख-दुख के साथ, दर्शन किए हैं, उसी के साथ एकात्म हुए हैं, उसी की वाणी, उनकी रचनाओं में गूँजी है और उसकी के सुख-दुख लेकर वे अपने प्रभु के समक्ष प्रणत हुए हैं।”⁴

सूरदास की सुगुण कृष्ण भक्ति धारा में लोक संस्कृति का सौन्दर्य भारतीय जनता की धरोहर है। लोकगीत परम्परा, लोक भाषा और मुक्तक-पद-शैली का ब्रजभाषा में सही उपयोग ही उनके काव्य और उनकी महाकवि की पदवी से सुशोभित करता है।

गोस्वामी तुलसीदास कबीर और सूरदास के विपरीत भक्ति आन्दोलन को एक सुव्यवस्थित पथ पर अग्रसर करते हैं। तभी तो आधुनिक समय में भी जनता पर उनकी रचनाओं का इतना गहरा प्रभाव है कि उसकी कल्पना भी कर पाना कठिन है। उनका साहित्य लोकप्रचलित रूढ़ियों को समाप्त करने तथा जतना के जागरण का साहित्य है। जनता के जागरण के प्रयास में लोकतत्व एवं लोक चेतना के जो रंग इनकी कविताओं में देखने को मिलते हैं वह और किसी समकालीन कविमें दृष्टव्य नहीं।

सुगुण भक्तिधारा में रामानन्द के लोकभाषा में लिखने की प्रेरणा देने के साथ जातिवाद विरोधी राज्य रूख अपनाया। रामानन्द के विचारों से प्रभावित हो तुलसीदास जाति-पाँति विरोधी स्वर तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता का विचार ले जनता के समक्ष आए। उनके काव्य में सामंतवाद एवं पुरातनवाद का विरोध है।

“भाव भेद रस भेद अपारा” के जानकर इस कवि को काव्य के विभावन व्यापार की विशेष पकड़ है। तुलसी ने सूर की भाँति लोक संस्कृति के आधार पर ग्राम जीवन के चित्र दिए हैं। रामचरित मानस इस बात का प्रमाण है। सीता से ग्राम वधुओं की सरस चर्चा, केवट, निषाद, शबरी, का प्रेम, अहिल्या उद्धार सच्ची जन संस्कृति का प्रमाण है। उनकी अन्य रचनाओं में कविताओं, गीतावाली भी लोक संस्कृति के उदाहरणों से भरी पड़ी है।

तुलसीदास जी ने “नहि दरिद्र कोई दुखी न दीना। नहि कोई अवुध न लच्छन हीना” के द्वारा रामराज की परिकल्पना करके लोकमंगल का जो विधान किया है उस विषय में डॉ० रामविलास शर्मा जी कहते हैं— “तुलसीदास का स्वप्न श्रमिक जनता के लिए धरोहर है जिससे प्रेरित होकर वह समाजवाद के लिए मंजिल-दर-मंजिल बढ़ती जायेगी। तुलसी का मानवप्रेम उनकी कविता को स्रोत है। उनके लिए साहित्य के प्रति सामंती विचारधाराओं से ही लड़ने में मदद नहीं देती, वह पूंजीवादी साहित्य सिद्धान्तों से भी लड़ने में मार्गदर्शन कराती हैं।”⁵

तुलसीदास जी उन मध्यकालीन संतों में से हैं जिन्होंने भक्ति में खोकर सामाजिक यथार्थ की अवहेलना नहीं की। जनता के दुःखों का हृदयद्रावक वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि जनता कभी अतिवृष्टि से परेशान हो रही थी तो कभी अनावृष्टि से। तुलसीदास जी ने जनताकी दरिद्रता, भुखमरी और अकाल पर द्रवित होते हुए लिखा—“कवि बारहिं बार दुकाल परे। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरे।”

कबीरास एवं तुलसीदास ने नारी के मोहिनी रूप को न मानकर पतिव्रता और सतीरूप की प्रशंसा की है जो एक माँ, भगिनी, बेटा, पत्नी रूप में है। किन्तु तुलसीदास जी ने नारी की इस विसंगति को भी चित्रित किया है जिसमें मुस्लिम आक्रमणों के फलस्वरूप ‘परदा प्रथा’ का प्रचलन हुआ। और बाल विवाह को मान्यता दी गयी। गोस्वामी जी ने स्त्री पराधीनता के विषय में कहा—“कत विधि सृजी नारी जग माहीं। पराधीन सपनेहुं सच नाहीं।”

तुलसीदास जी लोकजीवन के ऐसे गायक हैं जिन्होंने अकबर के शासनकाल में उसके राज्य के समानान्तर, तुलनात्मक दृष्टि से बढ़कर रामराज्य का आदर्श पेश किया है। वे जीवन की बहुरंगी छवियों तथा उसकी समग्रता के कवि हैं।

वस्तुतः गोस्वामी जी की सफलता का महत्वपूर्ण कारण उनकी लोकचित्त सम्बन्धी अभिज्ञता है जिसमें साधारण जनता के मनोविज्ञान तथा सामाजिक आचरण की उनकी समझ है, उनके अपने व्यक्तिगत जीवन के गहरे अनुभव हैं, और इन सबको व्यक्त कर पाने की उनकी अपनी रचना सामर्थ्य है। उनके गँवई संस्कार, भाषा में गँवई पुट, उसमें बसी लोक रस की मिठास उनकी लोकप्रियता का राज है।

भारतीय जनमानस के मन में व्याप्त योग्यता अनुरूप रोजगार न मिल पाने के दुख को प्रकट करते हुए वे लोक का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। यथा—

“खेती ना किसान को, भिखारी को न भीख भलि,
बनिक को बनिज न, चाकर को चाकरी
जीविका विहीन लोग सीधमान, सोच बस
कहैं एक-एकन सों, कहाँ जाई, का करी?”⁶

गोस्वामी जी की साधना लोकमंगल की साधना थी, वे इसे स्वीकार भी करते हैं— “परहित सरिस धरम नहिं अधमायी।”⁷

तुलसीदास जी के लिए मानवीय मूल्य सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है तभी वे अपनी धार्मिक, सामाजिक आदि सभी सोचों को परे रखते हुए मानव मूल्य को प्रतिष्ठित करते हुए मनुष्यता पर आस्था जगाते हैं।

भक्तिकालीन कवियों में कृष्ण भक्ति काव्य धारा में मीराबाई जैसे राजकुल में जन्मी स्त्री भी हैं जिन्होंने सामंतवाद की रुढ़ियों को तोड़ा है। जिस युग में स्त्री को तनिक भी आजादी प्राप्त न थी उस युग में मीरा लोक लाज, मर्यादा सभी को उस तज कर पूर्ण विद्रोह के साथ कृष्ण की भक्ति में लीन होती है। मीराबाई के द्वारा हमें

उस युग की नारी के जीवन-संघर्ष की कठोरता के दर्शन होते हैं। मीरा राजसत्ता को टुकराती हैं, पुरुष अत्याचार को पराजित करती हैं और स्वयं के लिए भक्ति का एक अलग मार्ग निकालती हैं।

शिव कुमार मिश्र मीरा के विषय में कहते हैं— “मीरा इस भक्ति आन्दोलन की अनूठी देन हैं। उनकी कविता नारी के अंतर्मन की उस घुटन और तड़प का प्रतिनिधित्व करती हैं, जो हमारी परम्परा और वेद तथा धर्मशास्त्र विहित हमारे विधि-विधानों के चलते, सदियों से नारी के अन्तर्मन में उमड़ती घुमड़ती रही, ओर जिसे ढोना नारी की नियति बन गयी है, या मान लिया गया है।”⁸ संक्षेपतः जातीय और जनवादी संस्कृति का सम्बन्ध पूंजीवादी सम्बन्धों के प्रसार से है। जब कुम्भनदास जी कहते हैं—संतान को कहाँ सीकरी सो काम।” तो यहाँ पर उनका दरबार के प्रति अनिच्छा का भाव प्रकट होता है। ‘सीकरी’ शब्द दरबार का प्रतीक है। कुम्भनदास की यह उक्ति मीरा के आचरण में भी चरितार्थ हुई। एक बार मीरा ने महल की चारदीवारी को लांघा तो वहाँ वापस, नहीं गयी।

तुलसीदास जी जैसे लोकनायक को भी दरबार के प्रतिकोई रुचि न थी तभी तो राजदरबार के प्रति लोभ न रखकर, उसे लानत देते हुए लिखा—

“हम चाकर रघुबीर के पढौं लिखौ दरबार।”
तुलसी अब, क्या होहिंगे नर के मनसबदार।”

ऐसे थे तुलसीदास जिन्होंने राजा-महाराजा, शहशाह अकबर की मनसबदारी को स्वीकार न करके जन की मनसबदारी को स्वीकार्य किया।

वस्तुतः भक्ति साहित्य लोक से जुड़ा हुआ है। पूंजीवादी सम्बन्धों का प्रसार ही वह कारण है जो ‘शास्त्र’ को ‘लोक’ की ओर बराबर झुका रहा था। भक्ति आन्दोलन इन्हीं अर्थों में लोक जागरण का काव्य है। भक्ति साहित्य का सौन्दर्यबोध लोक केन्द्रित था। इस साहित्य के ‘पाठक’ जनसाधारण व्यक्ति थे, सामंती और दरबारी नहीं अतः परिणामस्वरूप इस साहित्य के विषय, भाषा और शिल्प, सब पर ‘लोक’ का दबाव था।

सन्दर्भ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 36
2. जायसी ग्रन्थावली, सम्पा० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 125
3. वही, पृ० 2
4. डॉ० शिवकुमार मिश्र, भक्ति आन्दोलन और भक्ति काव्य, पृ० 130
5. रामविलास शर्मा, परम्परा का मूल्यांकन, पृ० 83
6. गोस्वामी तुलसीदास, कवितावली (उत्तरकाण्ड), पृ० 112 (गीता प्रेस)
7. वही, पृ० 822
8. डॉ० शिवकुमार मिश्र, भक्ति आन्दोलन, और भक्ति काव्य, पृ० 179-180